RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16, अंक-2, मार्च अप्रैल मई 2023

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16 अंक - 2 मार्च-अप्रैल-मई-2023

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

संत तुलसी के रामराज्य की मीमांसा

कमलेश कुमार अटल
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय सभ्यता और समाज की आधारशिला सदैव इस विचार पर टिकी रही है कि व्यक्ति केवल अपने लिए नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के लिए भी उत्तरदायी है। मनुष्य को एक मूल्यवान सामाजिक घटक बनाने का प्रयास इसीलिए किया गया, ताकि वह जिस भी भूमिका में हो—सामान्य नागरिक, प्रशासक या शासक—अपने कर्तव्यों का निर्वाह धर्म, मर्यादा और नैतिकता के अनुरूप करे। विशेष रूप से राजा या नेतृत्वकर्ता के लिए यह अपेक्षा और भी प्रबल रही कि वह आप्तपुरुष हो, जिसके सद्गुण, चरित्र और आचरण समाज के लिए आदर्श बन सकें। इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में संत तुलसीदास द्वारा प्रतिपादित 'रामराज्य' की अवधारणा को समझा जाना चाहिए, जो केवल एक राजनीतिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आदर्श है।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में राज्य और राजा की उत्पत्ति के विषय में एक महत्त्वपूर्ण विचार मिलता है। वाल्मीकि रामायण और महाभारत दोनों ही इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि सृष्टि के आरंभिक काल में न तो राजा था और न ही राज्य। सतयुग या कृतयुग में मनुष्य स्वयं अपने धर्म और सद्गुणों द्वारा नियंत्रित था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार उस युग में पृथ्वी पर कोई पार्थिव राजा नहीं था, केवल देवताओं का राजा इंद्र था और समस्त प्रजा बिना किसी शासक के ही धर्मपूर्वक जीवन यापन करती थी। महाभारत के शांतिपर्व में भी यही विचार प्रतिपादित है कि जब तक मनुष्य धर्माचरण करता रहा, तब तक न दंड की आवश्यकता थी और न ही दंड देने वाले की। धर्म ही समाज की रक्षा करता था।

धीरे-धीरे जब मनुष्यों के आचरण में अधर्म, स्वार्थ और संघर्ष बढ़ने लगे, तब समाज को अनुशासित रखने के लिए राजा और राज्य की अवधारणा विकसित हुई। प्रारंभिक शासन-व्यवस्था लोकतांत्रिक स्वरूप की थी, जहाँ सभा और समितियाँ शासन के संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। ऋग्वैदिक काल में समिति के माध्यम से राजा का चयन होता था और राजा भी समिति के प्रति उत्तरदायी होता था। यह व्यवस्था सामाजिक सहभागिता, सामूहिक उत्तरदायित्व और समानता पर आधारित थी। किंतु समय के साथ संपत्ति की असमानता, पारस्परिक विवाद और लोकतांत्रिक शिथिलता के कारण यह व्यवस्था दुर्बल होती चली गई और शासन की बागडोर एक व्यक्ति के हाथ में केंद्रित होने लगी। यहीं से दंड-व्यवस्था और राजतंत्र का सुदृढ़ रूप विकसित हुआ।

इसी ऐतिहासिक और वैचारिक विकासक्रम की पृष्ठभूमि में संत तुलसीदास रामराज्य की संकल्पना प्रस्तुत करते हैं। तुलसीदास के रामराज्य का आधार केवल राजसत्ता नहीं, बल्कि राम का आदर्श चरित्र है।

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

रामराज्य का अर्थ है ऐसा राज्य जहाँ राजा स्वयं धर्म, सत्य, करुणा और न्याय का मूर्त रूप हो। तुलसीदास के लिए राम केवल अयोध्या के राजा नहीं, बल्कि मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, जिनका निजी जीवन और सार्वजनिक आचरण दोनों ही आदर्श हैं। रामराज्य में शासन का उद्देश्य केवल सत्ता का संचालन नहीं, बल्कि प्रजा का नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक कल्याण है।

तुलसीदास के रामराज्य में दंड का स्थान है, परंतु वह करुणा और न्याय से नियंत्रित है। राजा दंडदाता अवश्य है, किंतु वह दंड प्रतिशोध से नहीं, बल्कि लोकमंगल की भावना से देता है। रामराज्य में कर व्यवस्था शोषणकारी नहीं है, बल्कि प्रजा की क्षमता और आवश्यकताओं के अनुरूप है। वहाँ किसी को भूख, भय या अन्याय का सामना नहीं करना पड़ता। सामाजिक जीवन में समरसता है, जाति, वर्ग और आर्थिक भेदभाव से उत्पन्न विद्वेष का स्थान नहीं है। यही कारण है कि तुलसीदास रामराज्य को केवल एक ऐतिहासिक शासन-प्रणाली के रूप में नहीं, बल्कि एक शाश्वत आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

लोकतंत्रीय संघों के विकास और उनके पतन के संदर्भ में प्राचीन भारतीय ग्रंथों में एक यथार्थवादी दृष्टि देखने को मिलती है। प्रारंभ में ये संघ समानता, सहभागिता और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना पर आधारित थे, किंतु समय के साथ उनमें पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, वैर, कलह और दोषों की वृद्धि होने लगी। जब व्यक्तिगत स्वार्थ, अहंकार और सत्ता-लालसा संघीय भावना पर हावी होने लगी, तब ये लोकतंत्रीय व्यवस्थाएँ अपने मूल उद्देश्य से विचलित होती चली गईं। इस स्थिति की पुष्टि कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी होती है, जहाँ विभिन्न गणराज्यों और संघों के आंतरिक संघर्षों, उनकी दुर्बलताओं और सत्ता-संघर्षों का यथार्थ चित्रण मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि केवल व्यवस्था का लोकतंत्रीय होना ही पर्याप्त नहीं है, जब तक उसे धारण करने वाले व्यक्तियों का चरित्र और आचरण उच्च न हो।

इसी संदर्भ में भारत की यह विशेषता और सौभाग्य माना जाता है कि यहाँ के ऋषियों ने मनुष्य के जीवन और समाज के कल्याण के लिए स्पष्ट दिशा-निर्देश प्रदान किए। ऋषियों का दृष्टिकोण केवल तत्कालीन राजनीतिक या सामाजिक समस्याओं तक सीमित नहीं था, बल्कि वे मानव जीवन को समग्र रूप से सुखी, संतुलित और समृद्ध बनाने के लिए सतत प्रयासरत रहे। यद्यपि कालांतर में मनुष्य ने उन मूल्यों की उपेक्षा की और उसके दुष्परिणाम भी भोगे, फिर भी ऋषियों की वाणी और उनके द्वारा प्रतिपादित आदर्श भारतीय चेतना में स्थायी रूप से विद्यमान रहे। ऋग्वेद और अथर्ववेद की प्रार्थनाएँ इस तथ्य का सशक्त प्रमाण हैं कि भारतीय परंपरा में उन पूर्वज ऋषियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की गई, जिन्होंने जीवन के मार्ग का निर्माण किया और समाज को दिशा दी। ऋग्वेद की प्रार्थना में उन प्राचीन ऋषियों को नमस्कार किया गया है, जिन्होंने मानव जीवन के पथ का निर्माण किया, जबकि अथर्ववेद में उन्हें समाज-कल्याण के कर्ता और यज्ञों में देवताओं के समान पूजनीय माना गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय परंपरा में ज्ञान, मार्गदर्शन और लोकमंगल को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था।

जब शासन-व्यवस्था, चाहे वह लोकतंत्रीय हो या राजतंत्रीय, अंततः एक व्यक्ति—राजा या मुखिया—के अधीन केंद्रित होने लगी, तब ऋषियों ने अपने दायित्व-बोध का निर्वाह करते हुए राजा के आदर्श गुणों को रेखांकित करना आरंभ किया। उन्होंने केवल गुणों का वर्णन ही नहीं किया, बल्कि समाज के माध्यम से राजा पर नैतिक दबाव भी बनाया कि वह उन गुणों का आचरण करे। वाल्मीकि रामायण में राजा के लिए जिन गुणों का उल्लेख किया गया है, वे केवल राजनीतिक दक्षता तक सीमित नहीं हैं, बल्कि नैतिक और

आत्मिक अनुशासन को भी समाहित करते हैं। इंद्रिय-निग्रह और मन-संयम राजा को आत्मसंयमी बनाते हैं, क्षमा और धर्म उसे न्यायप्रिय और लोकहितकारी बनाते हैं, धैर्य और सत्य उसके निर्णयों को स्थिरता और विश्वसनीयता प्रदान करते हैं, पराक्रम उसे राज्य की रक्षा में समर्थ बनाता है और अपराधियों को दंड देने की क्षमता व्यवस्था और अनुशासन को बनाए रखने के लिए आवश्यक मानी गई है। इस प्रकार राजा का चरित्र ही राज्य की दिशा और दशा का निर्धारक बन जाता है।

वाल्मीकि रामायण में यह भी स्पष्ट किया गया है कि केवल साम, अर्थात् शांति और समझौते की नीति से ही न तो कीर्ति प्राप्त होती है, न यश की वृद्धि होती है और न ही युद्ध या संघर्ष की स्थिति में विजय संभव होती है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हिंसा या दमन को प्राथमिकता दी जाए, बल्कि यह संकेत है कि शासन में संतुलन आवश्यक है। जहाँ शांति, संवाद और करुणा आवश्यक हैं, वहीं अन्याय और अधर्म के विरुद्ध कठोरता और दंड भी अपरिहार्य हैं। यही संतुलन आगे चलकर तुलसीदास के रामराज्य की अवधारणा में और अधिक परिष्कृत रूप में दिखाई देता है, जहाँ राजा करुणामय भी है और न्यायप्रिय भी, क्षमाशील भी है और आवश्यक होने पर दंडदाता भी।

भारतीय राजनैतिक चिंतन में राजा का स्वरूप केवल सत्ता के धारक के रूप में नहीं, बल्कि नीति, विवेक और लोककल्याण के संरक्षक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। नीति, विनय, सत्य और पराक्रम जैसे राजोचित गुण जिस राजा में सम्यक रूप से स्थित होते हैं, वही देश और काल के तत्त्व को भली-भाँति समझने में समर्थ होता है। ऐसा राजा परिस्थितियों की सूक्ष्मता को पहचानकर समयानुकूल निर्णय ले सकता है और इसी कारण वह राज्य की रक्षा तथा उसके सुचारु संचालन में सक्षम माना गया है। वाल्मीकि रामायण में यह स्पष्ट किया गया है कि जिस राजा में विनय और नीति के साथ सत्य की दृढ़ स्थापना हो तथा जिसका पराक्रम यथार्थ रूप में प्रकट होता हो, वही देशकाल का ज्ञाता कहलाता है। यहाँ देशकालवित् होने का अर्थ केवल भौगोलिक या ऐतिहासिक ज्ञान नहीं है, बल्कि सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक परिस्थितियों को समझने की गहरी क्षमता है, जो एक आदर्श शासक के लिए अनिवार्य मानी गई है।

महाभारत के शांतिपर्व में राजा के व्यवहार की एक अत्यंत व्यावहारिक मीमांसा प्रस्तुत की गई है। उसके अनुसार यदि राजा सदा कोमल व्यवहार करता है तो लोग उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने लगते हैं और उसे हल्के में लेने लगते हैं। इसके विपरीत यदि राजा अत्यधिक कठोर होता है तो प्रजा उससे भयभीत, उद्विग्न और क्षुब्ध हो जाती है। अतः राजा के लिए यह आवश्यक बताया गया है कि वह कोमलता और कठोरता-दोनों का संतुलित आश्रय ले। यह संतुलन ही शासन की सफलता का मूल है। राजा का दायित्व केवल दंड देना नहीं, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर करुणा दिखाना भी है। यही संतुलित दृष्टि शासन को स्थायित्व प्रदान करती है और प्रजा के मन में राजा के प्रति सम्मान और विश्वास उत्पन्न करती है।

महाभारत में राज्यहित को सर्वोपरि मानने की भावना भी अत्यंत प्रबल रूप में व्यक्त की गई है। ग्रंथ के अनुसार प्रजा को राजा और राज्य के हित के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को भी तत्पर रहना चाहिए। यहाँ तक कहा गया है कि यदि राज्यहित के लिए अपने निकट संबंधियों का त्याग भी करना पड़े, तो वह भी धर्मसम्मत माना जाता है। इसका उदाहरण असमंजस राजा के प्रसंग से दिया गया है, जिसने पौरहित अर्थात् प्रजा के हित के लिए अपने ज्येष्ठ पुत्र का त्याग कर दिया। इस दृष्टांत के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि राज्य और प्रजा का हित व्यक्तिगत मोह और संबंधों से ऊपर है। राजा और

प्रजा—दोनों के लिए लोककल्याण सर्वोच्च मूल्य है।

मनुस्मृति में राज्य और राजा की उत्पत्ति को अराजकता के संदर्भ में समझाया गया है। कहा गया है कि जब संसार में सर्वत्र भय, अव्यवस्था और अराजकता फैलने लगी, तब समस्त प्राणियों की रक्षा के लिए ईश्वर ने राजा की सृष्टि की। इससे यह स्पष्ट होता है कि राजा का मूल उद्देश्य प्रजा की सुरक्षा और व्यवस्था की स्थापना है। किंतु मनुस्मृतिकार राजा को निरंकुश नहीं मानते। वे राजा के लिए सत्यवादी, विवेकशील, समीक्षा करने वाला तथा धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों पुरुषार्थों का ज्ञाता होना अनिवार्य बताते हैं। ऐसा राजा ही त्रिवर्ग के सम्यक संतुलन के द्वारा राज्य की उन्नति कर सकता है।

इसके विपरीत जो राजा विषयासक्त, क्रोधी, असंतुलित और क्षुद्र विचारों वाला होता है, उसके विनाश को भी निश्चित माना गया है। मनुस्मृति के अनुसार ऐसा राजा दंड के द्वारा ही नष्ट हो जाता है, क्योंकि उसका शासन लोकहित के विरुद्ध होता है। यहाँ दंड का अर्थ केवल बाह्य दंड नहीं, बल्कि समय, परिस्थितियाँ और जनता का प्रतिरोध भी है, जो अंततः ऐसे शासक को पतन की ओर ले जाता है।

मनुस्मृति में अधर्मी राजा के दुष्परिणामों का भी स्पष्ट उल्लेख है। जो राजा निर्धारित मर्यादाओं का पालन नहीं करता, नास्तिक होता है, अन्यायपूर्वक दंड देकर धन एकत्र करता है, प्रजा की रक्षा न करके उनके अंश का उपभोग करता है, ऐसा राजा अधोगति को प्राप्त होता है। यह कथन राजा के लिए एक कठोर नैतिक चेतावनी के रूप में सामने आता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय चिंतन में राजा भी धर्म के अधीन है, न कि धर्म राजा के अधीन।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस राजधर्म को और अधिक व्यवहारिक आधार प्राप्त होता है। कौटिल्य ने राजा को विद्यावृद्ध और अनुभवी पुरुषों की सत्संगति में रहने की सलाह दी है। उनके अनुसार संपूर्ण विनय की प्राप्ति ऐसे ही ज्ञानी और वृद्धजनों के संपर्क से संभव है, क्योंकि विनय का मूल स्रोत विद्या और अनुभव है। राजा यदि विद्वानों के सान्निध्य में रहता है तो उसका विवेक परिष्कृत होता है, निर्णय संतुलित होते हैं और शासन लोककल्याणकारी बनता है।

कौटिल्य के राजनैतिक चिंतन का मूल केंद्र लोककल्याण है। वे स्पष्ट रूप से यह मानते हैं कि राजा का अस्तित्व और उसकी सत्ता तभी सार्थक है, जब वह प्राणिमात्र के हित में संलग्न रहे और प्रजा के शासन तथा शिक्षण में निरंतर तत्पर हो। अर्थशास्त्र में कहा गया है कि जो राजा विद्या से विनीत होता है, जो प्रजा के अनुशासन और उन्नति में रुचि रखता है तथा जो समस्त प्राणियों के कल्याण में रत रहता है, वही दीर्घकाल तक पृथ्वी का भोग करता है, अर्थात् स्थायी और सुदृढ़ शासन कर पाता है। यहाँ 'भोग' का अर्थ विलास नहीं, बल्कि उत्तरदायित्वपूर्वक शासन करना है। कौटिल्य के अनुसार शासन की स्थायित्व-शक्ति राजा की सैन्य या आर्थिक क्षमता में नहीं, बल्कि उसकी विद्या, विनय और लोकहितकारी दृष्टि में निहित है।

इसी क्रम में कौटिल्य राजा के लिए इंद्रिय-निग्रह को अत्यंत आवश्यक मानते हैं। उनका मत है कि राजा को काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष—इन छह शत्रुओं का त्याग करके इंद्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। इंद्रियजय को वे विद्या और विनय का मूल कारण बताते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जब तक राजा स्वयं आत्मसंयमी नहीं होगा, तब तक वह न तो न्याय कर सकेगा और न ही प्रजा के कल्याण का सच्चा मार्गदर्शन कर सकेगा। इंद्रियासक्ति राजा को स्वार्थी, अन्यायी और अत्याचारी बना देती है, जबकि

इंद्रिय-निग्रह उसे विवेकशील, धैर्यवान और लोकमंगलकारी बनाता है। इस प्रकार कौटिल्य का राजा एक तपस्वी शासक की भाँति है, जो सत्ता को साधन मानता है, साध्य नहीं।

भारतीय मनीषियों की यह परंपरा केवल सैद्धांतिक नहीं रही, बल्कि इतिहास में ऐसे अनेक राजा हुए जिनका शासन लोकहित को समर्पित था। ऋषियों ने जिन मूल्यों—धर्म, सत्य, करुणा, संयम और लोककल्याण—का निर्देशन किया, वे केवल उपदेश मात्र नहीं थे, बल्कि शासन के व्यावहारिक आदर्श थे। इसी दीर्घ परंपरा का निर्वाह आगे चलकर संत तुलसीदास ने किया। तुलसी का चिंतन भी उसी आप्तपुरुषता की कामना करता है, जिसमें राजा का चरित्र प्रजा के लिए आश्रय और विश्वास का केंद्र बन सके। तुलसीदास के रामराज्य का आदर्श वस्तुत: इसी प्राचीन राजधर्म की पुनर्प्रतिष्ठा है, जहाँ राजा इंद्रियजित्, न्यायप्रिय और लोककल्याण में रत होता है।

तुलसी का युग ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत विषम परिस्थितियों का युग था। यह वह समय था जब शासकों द्वारा भारतीय प्रजा, विशेषकर हिंदू समाज, के साथ अन्याय और अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे। शासन-व्यवस्था का उद्देश्य प्रजा का संरक्षण न होकर कर-वसूली और सत्ता की स्थिरता मात्र रह गया था। संपूर्ण प्रजा शासकों, उनके अमात्यों, पैरोकारों और चाटुकारों के लिए धन एकत्र करने का साधन बनकर रह गई थी। हिंदू प्रजा को जीवित रहने के लिए भी भारी कर देने पड़ते थे, जिसके कारण वे दरिद्रता और अभावग्रस्त जीवन जीने को विवश थे। भूख, बेरोजगारी और निर्धनता उनके जीवन का स्थायी सत्य बन चुकी थी।

इसके विपरीत शासक वर्ग के ऐशो-आराम और विलासिता में कोई कमी नहीं थी। राजदरबारों में वैभव, भोग और ऐश्वर्य का प्रदर्शन होता था, जबकि सामान्य जनता धन के अभाव में जीवन का बोझ ढो रही थी। महामारी, दुर्भिक्ष और प्राकृतिक आपदाओं के समय प्रजा को स्वयं ही अपने कष्टों का सामना करना पड़ता था। न तो शासन तक उनकी पीड़ा की सूचना पहुँचती थी और न ही शासकों को प्रजा के कुशल-क्षेम की कोई वास्तविक चिंता थी। मुगल सम्राट अपने राज्य को राजनीतिक रूप से स्थिर रखने और सत्ता को सुरक्षित करने में ही अपनी समस्त शक्ति और कौशल लगा रहे थे, प्रजा का कल्याण उनके लिए गौण विषय बन चुका था।

तुलसीदास ने इस आर्थिक और सामाजिक दुर्दशा का अत्यंत मार्मिक चित्रण अपनी कृतियों में किया है। कवितावली का प्रसिद्ध पद तत्कालीन समाज की टूटती हुई जीवन-व्यवस्था को जीवंत कर देता है, जहाँ न किसान के पास खेती है, न भिखारी को भीख, न व्यापारी को व्यापार और न ही सेवक को चाकरी। लोग जीविका से वंचित होकर चिंता और शोक में घुलते जा रहे हैं और एक-दूसरे से निराश स्वर में पूछते हैं कि अब कहाँ जाएँ और क्या करें। यह केवल काव्यात्मक अतिशयोक्ति नहीं, बल्कि उस समय की सामाजिक वास्तविकता का यथार्थ चित्र है।

तुलसीदास के युग की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ अत्यंत विषम और करुणाजनक थीं। एक ओर किसान अन्याय और अत्याचार के बोझ तले दबा हुआ था, तो दूसरी ओर पथिकों और सामान्य जन की सुरक्षा का कोई प्रबंध नहीं था। मार्गों में यात्रियों को लूटा जाता था और जनता से असंख्य कुमार्गों से धन एकत्र किया जाता था। शासन का उद्देश्य लोक-रक्षा न रहकर केवल धन-संग्रह और सत्ता-संरक्षण बन गया था। इन समस्त संकटों और पीड़ाओं का अत्यंत सजीव और मार्मिक चित्रण तुलसीदास ने अपनी कृति

'कवितावली' में किया है। वे भारत की त्रस्त, दीन–हीन और शोषित जनता की दुर्दशा को देखकर भीतर तक व्यथित हो उठते हैं। अन्याय और अत्याचार से उत्पन्न यह पीड़ा इतनी तीव्र थी कि तुलसी अन्यायियों को शाप देने के लिए भी उद्यत हो जाते हैं। उनके काव्य में यह शाप केवल भावावेश नहीं, बल्कि नैतिक चेतावनी है कि जो लोग अन्याय से धन एकत्र करते हैं और गरीबों को सताते हैं, उनका अंत अपमान और पतन में ही होता है। 'दीवाली का दीया चाटकर जाना' जैसी उक्ति लोकभाषा में उस घोर दयनीय दशा की ओर संकेत करती है, जिसमें अंततः अत्याचारी को पहुँचना पड़ता है।

भारतीय हिंदू समाज की इस दुर्दशा को देखकर तुलसीदास केवल करुणा तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे उसके मूल कारणों की खोज करते हैं। उन्हें स्पष्ट दिखाई देता है कि समाज की यह अवस्था दुराचारी, अन्यायी, अज्ञानी और विषयासक्त शासकों के कारण उत्पन्न हुई है। इसलिए वे प्रजा के सभी कष्टों के निवारण का उपाय किसी बाह्य सुधार में नहीं, बल्कि ऐसे आदर्श राजा की स्थापना में देखते हैं, जो श्रुतिसम्मत आदर्शों और सद्गुणों से विभूषित हो। इसी खोज में उनकी दृष्टि वाल्मीकि रामायण की ओर जाती है, जहाँ राम को धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, प्रजा के हित में निरत, कीर्तिमान, ज्ञान–संपन्न, पवित्र तथा मन और इंद्रियों को वश में रखने वाला बताया गया है। तुलसी के लिए राम केवल एक ऐतिहासिक या पौराणिक पात्र नहीं, बल्कि उस आदर्श राजपुरुष के सजीव प्रतीक हैं, जिसकी अनुपस्थिति में समाज अराजकता और शोषण का शिकार हो जाता है।

तुलसी को यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि दुराचारी और अन्यायी राजा से जनता के हित की अपेक्षा करना व्यर्थ है। जब तक शासक का चरित्र शुद्ध, संयमित और लोककल्याणकारी नहीं होगा, तब तक शासन–व्यवस्था चाहे कैसी भी हो, वह प्रजा के लिए दुःख का कारण ही बनेगी। इसी कारण तुलसी राम को ईश्वरों के ईश्वर, महाराजाओं के महाराज और देवों के देव के रूप में स्वीकार करते हुए भी उनकी महानता को दंभ या अहंकार से रहित बताते हैं। उनके राम अपनी अपार महिमा के प्रति भी अत्यंत सावधान हैं। यह सावधानी वस्तुतः सत्ता के प्रति विनय और उत्तरदायित्व की प्रतीक है। तुलसी के राम की महत्ता इसी में है कि वे सर्वशक्तिमान होते हुए भी अत्यंत नम्र, करुणाशील और लोकहित के प्रति सजग हैं।

भारतीय ऋषि–परंपरा में राजा चाहे राजतंत्र का हो या लोकतंत्र का, उससे आदर्श, सद्‌गुण और आप्तपुरुषत्व की अपेक्षा की गई है। शासन का रूप गौण है, शासक का चरित्र प्रधान है। यही विचार तुलसी के चिंतन का केंद्र है। वे ऐसे राजा की कामना करते हैं जो समाज और राष्ट्र में व्याप्त विषमता, अन्याय और पीड़ा को दूर कर सके और जनता को सुख, शांति और समृद्धि का वातावरण प्रदान कर सके। तुलसी की आकांक्षा केवल तत्कालीन संकटों के निवारण तक सीमित नहीं है; वे भारत की खोई हुई प्रतिष्ठा, टूटे हुए मनोबल और क्षीण हुए आत्मविश्वास को पुनः जाग्रत देखना चाहते हैं। उनके रामराज्य में शासन जनता पर बोझ नहीं, बल्कि उसके लिए आश्रय बनता है।

तुलसीदास ने अपने जीवनकाल में सत्ता–संघर्ष और राजनीतिक हिंसा के जो भयावह दृश्य देखे, वे उनके मन पर गहरे अंकित हो गए। उनके समय में शत्रुओं के प्रति किया जाने वाला व्यवहार अत्यंत घृणास्पद और अमानवीय था। किसी राज्य या शासक के पराजित होते ही उसकी संपत्ति की लूट तो सामान्य बात थी ही, परंतु उससे भी अधिक निंदनीय उसकी स्त्रियों, पुत्रियों और परिवारजनों के साथ किया जाने वाला कुत्सित और अपमानजनक व्यवहार था। यह स्थिति मनुष्य की मानवीयता पर ही प्रश्नचिह्न लगा देती

थी। सत्ता की लालसा इतनी प्रबल हो चुकी थी कि भाई भाई से और पिता पुत्र से संघर्ष करने लगा था। मध्यकालीन इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है, जहाँ सत्ता-प्राप्ति के लिए रक्त-संबंधों तक को तिलांजलि दे दी गई। तुलसी ने इस समस्त हिंसा, घृणा और अमर्यादा का प्रत्यक्ष अनुभव किया था, और यही कारण है कि उनके राम मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में उभरते हैं, जो सत्ता को नहीं, बल्कि मर्यादा और मानवता को सर्वोपरि रखते हैं।

राम का रावण-वध केवल एक शत्रु का संहार नहीं है, बल्कि अधर्म, अन्याय और निरंकुशता का अंत है। इसके बाद भी राम के आचरण में कहीं भी प्रतिशोध, अहंकार या क्रूरता का भाव नहीं दिखाई देता। वे रावण की पराजय के पश्चात विभीषण को रावण की अंत्येष्टि करने का आदेश देते हैं और लक्ष्मण को इस कर्तव्य के महत्त्व को समझाते हैं। यह व्यवहार उस युग की सामान्य राजनीतिक परंपरा से बिल्कुल विपरीत है, जहाँ शत्रु के मृत शरीर का अपमान तक किया जाता था। राम का यह आदेश मानवीय करुणा और धर्मबोध का प्रतीक है। यही नहीं, वे रावण की पत्नी मंदोदरी के शील और सम्मान की रक्षा का भी पूरा ध्यान रखते हैं। राम की कृपादृष्टि से विभीषण अपने शोक को त्यागकर विधि-विधानपूर्वक रावण का अंतिम संस्कार करते हैं और मंदोदरी सहित समस्त स्त्रियाँ राम के गुणों का मन में स्मरण करती हुई तिलांजलि देती हैं। यह प्रसंग दर्शाता है कि राम के लिए युद्ध भी मर्यादा और करुणा से शून्य नहीं होता।

बारहवीं शताब्दी से लेकर तुलसीदास के समय तक की ऐतिहासिक परिस्थितियों पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि अधिकांश शासकों को प्रजा के हित से कोई विशेष सरोकार नहीं था। राज्य-विस्तार ही उनका एकमात्र लक्ष्य बन चुका था, जिसके लिए वे निरंतर रक्तपात, छल-कपट और कूटनीति का सहारा लेते थे। राजाओं और शासकों के इन कुकृत्यों से मानवता कराह रही थी। ऐसे वातावरण में तुलसीदास का रामराज्य एक नैतिक आदर्श और मानवीय विकल्प के रूप में सामने आता है। रावण-वध के पश्चात राम द्वारा लंका का राज्य विभीषण को सौंपना और उसका विधिवत राजतिलक कराना इसी नीति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वे सत्ता को अपने अधीन रखने के बजाय धर्मपरायण और योग्य व्यक्ति को सौंपते हैं। लक्ष्मण के साथ अंगद, नल, नील, जामवंत और हनुमान को भेजकर राम यह सुनिश्चित करते हैं कि सत्ता-परिवर्तन न्याय, मर्यादा और विधि के अनुरूप हो।

रावण का शासन निरंकुशता, अत्याचार और अन्याय का प्रतीक था। उसके राज्य में भय, शोक और मानसिक तथा शारीरिक पीड़ा सर्वत्र व्याप्त थी। कोई भी व्यक्ति स्वयं को स्वतंत्र नहीं समझता था। रावण अपनी दुर्नीति और बल-प्रयोग से देव, यक्ष, गंधर्व, मनुष्य, किन्नर और नाग—सभी पर अपना प्रभुत्व जमाए हुए था। उसका शासन भय और आतंक पर आधारित था, जहाँ स्वतंत्रता और न्याय के लिए कोई स्थान नहीं था। इसके विपरीत, राम के राजसिंहासन पर आरूढ़ होते ही समाज का संपूर्ण वातावरण बदल जाता है। विषमता, भय, शोक और संताप का स्थान हर्ष, शांति और संतुलन ले लेते हैं। इसका कारण यह है कि रामराज्य में प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार कर्तव्य और दायित्वों का पालन करता है।

रामराज्य में वैर और शत्रुता का भाव समाप्त हो जाता है। कोई किसी से बैर नहीं करता और राम के प्रताप से सामाजिक विषमता का लोप हो जाता है। वर्णाश्रम व्यवस्था अपने शुद्ध और नैतिक रूप में कार्य करती है, जहाँ लोग वेदमार्ग के अनुसार आचरण करते हुए निरंतर सुख प्राप्त करते हैं। इस राज्य में न तो भय

है, न शोक और न ही रोग। रामराज्य केवल राजनीतिक स्थिरता का नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक समरसता का भी प्रतीक है। जनता दैहिक, दैविक और भौतिक कष्टों से मुक्त है। आर्थिक विपन्नता, दीनता और अभाव का भी वहाँ अभाव है। यह स्थिति केवल समृद्धि का परिणाम नहीं, बल्कि सुशासन, न्याय और मर्यादा का फल है।

तुलसीदास की मूल आकांक्षा भारत में ऐसे सुशासन (सुराज) की स्थापना की थी, जो अन्याय, अत्याचार, भय और शोषण से पूर्णत: मुक्त हो। अपने समय में व्याप्त हिंसा, सत्ता-संघर्ष, स्त्री-अपमान और प्रजा-उपेक्षा को देखकर तुलसी अत्यंत व्यथित थे। इसी पीड़ा से प्रेरित होकर उन्होंने रामराज्य की संकल्पना प्रस्तुत की, जिसे वे आदर्श शासन का प्रतिमान मानते हैं।

रामराज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक किसी भी प्रकार का ताप नहीं है। वहाँ सभी लोग परस्पर प्रेमभाव से रहते हैं, अपने-अपने धर्म और मर्यादा का पालन करते हैं। न कोई दरिद्र है, न दुखी, न दीन-हीन और न ही सामाजिक विषमता। आर्थिक, सामाजिक और नैतिक सभी स्तरों पर संतुलन और समृद्धि दिखाई देती है।

तुलसी ने राम के चरित्र के माध्यम से आदर्श राजा का स्वरूप स्पष्ट किया है—राम धर्मज्ञ, सत्यनिष्ठ, विनयी, दंभहीन और प्रजाहितैषी हैं। वे शत्रु के प्रति भी मानवीय दृष्टि रखते हैं, जैसा कि रावण-वध के बाद विभीषण को सम्मानपूर्वक राज्य सौंपने और रावण की अंत्येष्टि का आदेश देने में दिखाई देता है। निषाद, केवट, शबरी, जटायु जैसे समाज के उपेक्षित माने जाने वाले वर्गों के प्रति राम का प्रेम और सम्मान तुलसी के मानवीय आदर्शों को उजागर करता है।

एकनारीव्रत का आदर्श प्रस्तुत कर तुलसी ने नारी-सम्मान और नैतिक जीवन की महत्ता को रेखांकित किया। उनके अनुसार 'यथा राजा तथा प्रजा' के सिद्धांत के अनुरूप तभी समाज में सदाचार, समता और समरसता आती है जब शासक स्वयं गुणवान हो। नीतिविहीन राजा तुलसी की दृष्टि में सदैव शोचनीय है।

तुलसीदास राजा (मुखिया) के आदर्श गुणों का निरूपण अत्यंत व्यावहारिक और मानवीय उपमानों के माध्यम से करते हैं। वे राजा को माली, सूर्य, किसान और मुख के समान मानते हैं। माली जैसे सूखे पौधों को सींचता है, अधिक बढ़े पौधों को काट-छाँट कर संतुलित करता है और झुके पौधों को सहारा देता है—वैसे ही राजा को दीन-निर्धनों की रक्षा, दुर्बलों का पोषण और उच्छृंखल व दुराचारी तत्वों का नियंत्रण करना चाहिए। सूर्य बिना किसी को कष्ट दिए समुद्र और नदियों से जल लेकर अमृतरूप वर्षा करता है; उसी प्रकार राजा को प्रजा से कर इस तरह लेना चाहिए कि उसे बोझ का अनुभव न हो। किसान भी परिश्रम, संरक्षण और धैर्य से फसल तैयार करता है—राजा का दायित्व भी वैसा ही दीर्घदृष्टिपूर्ण होना चाहिए।

तुलसी मुखिया को 'मुख' के समान मानते हैं—मुख अकेला भोजन करता है, किंतु उससे पूरे शरीर का पोषण होता है। इसी प्रकार राजा को विवेकपूर्वक शासन चलाना चाहिए, न कि कर से प्राप्त धन को अपने भोग-विलास में नष्ट कर देना चाहिए। राजा का स्वार्थी और लोभी होना शासन को पतन की ओर ले जाता है।

तुलसी के रामराज्य का मूल आधार 'संतोष' है। संतोष से कामनाएँ नियंत्रित होती हैं और समाज में सुख-शांति स्थापित होती है। रामराज्य में खेती, व्यापार, विद्या, सेवा, श्रम और शिल्प—सभी को उनका

उचित फल मिलता है; किसी का परिश्रम निष्फल नहीं जाता। समाज में परस्पर प्रेम और सद्भाव इतना प्रबल है कि क्रोध और वैर की चिंता तक नहीं रहती। साथ ही, तुलसी यह भी स्पष्ट करते हैं कि प्रजा का सदाचार राजा के आचरण से ही विकसित होता है। शासन तभी सफल हो सकता है जब राजा, उसके भाई-बंधु, अधिकारी और सहयोगी आपसी समरसता और एकता से कार्य करें। रामराज्य में भाइयों का परस्पर प्रेम, अनुशासन और नीति-पालन इस आदर्श का श्रेष्ठ उदाहरण है।

डॉ. रमानाथ त्रिपाठी के अनुसार राम के व्यक्तित्व में चार मूल गुण राष्ट्र और शासन के लिए आदर्श प्रतिमान प्रस्तुत करते हैं। प्रथम, राम त्याग के प्रतीक हैं—वे परिवार, राज्य और स्वयं के सुख का परित्याग कर मातृभूमि और राष्ट्र की मर्यादा की रक्षा के लिए वनगमन तक को स्वीकार करते हैं। दूसरा, उनका संपूर्ण जीवन सदाचार, नैतिकता और मर्यादा से अनुप्राणित है; वे निजी और सार्वजनिक जीवन में किसी भी प्रकार के नैतिक विचलन को स्थान नहीं देते। तीसरा, राम दीन-दुखियों के प्रति करुणाशील हैं—शबरी, निषाद, भील-कोल जैसे वंचित वर्गों को अपनाकर वे सामाजिक समता और मानवीय गरिमा का आदर्श स्थापित करते हैं। चौथा, वे अन्याय और आततायियों के विरुद्ध दृढ़ हैं—ताड़का, खर-दूषण, सुबाहु और रावण के वध द्वारा वे अधर्म के विनाश और धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं।

लेखक के अनुसार आज का राष्ट्र ऐसे ही मुखिया की अपेक्षा करता है। वर्तमान समय में जब राजनीति स्वार्थ, दंभ, भ्रष्टाचार और मर्यादाहीनता से ग्रस्त है; जब जनता के करों से प्राप्त धन ऐशो-आराम में व्यय हो रहा है; और जब लोकतंत्र में भी मध्यकालीन सत्ता-प्रवृत्तियाँ दिखने लगी हैं—तब तुलसी का रामराज्य एक व्यवहारिक समाधान के रूप में सामने आता है। दलगत राजनीति ने राष्ट्रहित को हाशिये पर डाल दिया है, जिससे जनता निरंतर पीड़ा में जी रही है।

समस्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि भारतीय शास्त्रीय परंपरा, कौटिल्य, मनु, महाभारत और तुलसीदास सभी ने शासन का मूल आधार नीति, धर्म, विनय, सत्य, इंद्रियनिग्रह और लोकहित को माना है। राजा (या मुखिया) तभी श्रेष्ठ शासक हो सकता है जब वह माली, किसान, सूर्य और मुख के समान व्यवहार करे—प्रजा का पोषण करे, अनुशासन बनाए रखे, बिना कष्ट दिए संसाधनों का संकलन करे और समस्त शासन-तंत्र को विवेकपूर्वक संचालित करे। तुलसीदास ने अपने युग की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दुर्दशा को देखकर 'रामराज्य' को आदर्श शासन के रूप में प्रस्तुत किया, जहाँ दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं हैं; न दरिद्रता है, न अन्याय, न भय। राम के व्यक्तित्व में त्याग, सदाचार, करुणा और पराक्रम—ये चारों गुण समन्वित रूप में विद्यमान हैं, जो शासक के लिए अनिवार्य हैं। राम का शबरी, निषाद, केवट जैसे वंचित वर्गों से प्रेम और अन्यायियों के प्रति कठोरता आदर्श नेतृत्व का परिचायक है।

अत: तुलसी का रामराज्य केवल धार्मिक या काव्यात्मक कल्पना नहीं, बल्कि सुशासन, सामाजिक समरसता और लोककल्याण पर आधारित एक व्यवहारिक आदर्श है। आज के स्वार्थी, भ्रष्ट और मर्यादाहीन राजनीतिक परिवेश में रामराज्य के मूल्य अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं। यदि राष्ट्र को न्याय, शांति और समृद्धि की दिशा में ले जाना है, तो राम के गुणों से युक्त नीतिवान और करुणामय नेतृत्व ही उसका एकमात्र मार्ग है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ऋग्वेद संहिता, सायणाचार्य (भाष्यकार), चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 2004*
2. *अथर्ववेद संहिता, सायणाचार्य (भाष्य सहित), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2002*
3. *वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2010*
4. *महाभारत (शांतिपर्व), संपादक: रामनारायणदत्त शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2012*
5. *मनुस्मृति (मेधातिथि भाष्य सहित), संपादक: पं. गंगानाथ झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2006*
6. *कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अनुवादक: डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2011*
7. *रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, संपादक: हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2014*
8. *कवितावली, गोस्वामी तुलसीदास, संपादक: रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2001*
9. *दोहावली, गोस्वामी तुलसीदास, संपादक: डॉ. रामकुमार वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998*
10. *विनयपत्रिका, गोस्वामी तुलसीदास, संपादक: हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005*
11. *भगवद्गण दर्पण, संपादक: पं. युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, 1995*
12. *तुलसीदास का राजदर्शन, डॉ. रमानाथ त्रिपाठी, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1997 ई.*
13. *रामराज्य की अवधारणा, डॉ. रामशरण गौड़, संस्कृति संवाद प्रकाशन, जयपुर, 2016*
14. *भारतीय राजनीतिक चिंतन, डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009*